साधना का स्वरूप और आचार्य श्री की साधना

□ श्री कन्हैयालाल लोढ़ा

साधना का स्वरूप व प्रकार :

खाना, पीना, देखना, सुनना, विलास करना आदि द्वारा क्षणिक सुखों का भोग तथा कामना अपूर्तिजन्य दुःख का वेदन तो मनुष्येतर प्राणी भी करते हैं। मनुष्य की विशेषता यही है कि वह दुःख रहित अक्षय-अखंड-अनंत सुख का भी भोग कर सकता है। जो मनुष्य ऐसे सुख के लिए प्रयत्नशील होता है, उसे ही साधक कहा जाता है। आचार्य श्री हस्तीमलजी म. सा. ऐसे ही एक उत्कृष्ट साधक थे। यह नियम है कि दुःख मिलता है—असंयम, कामना, ममता, अहंता, राग, द्वेष, मोह, आसक्ति, विषय, कषाय आदि दोषों से और सुख मिलता है—क्षमा, मैत्री, निरभिमानता, विनम्रता आदि सद्‌गुणों से। अतः दुःख रहित सुख पाने का उपाय है दोषों की निवृत्ति एवं गुणों की अभिव्यक्ति। दोषों की निवृत्ति को निषेधात्मक साधना एवं गुणों की अभिव्यक्ति व क्रियान्विति को विधि-आत्मक साधना कहा जाता है। साधना के ये दो ही प्रमुख अंग हैं—(१) निषेधात्मक साधना और (२) विधि-आत्मक साधना। निषेधात्मक साधना में जिन दोषों का त्याग किया जाता है उन दोषों के त्याग से उन दोषों से विपरीत गुणों की अभिव्यक्ति साधक के जीवन में सहज होती है, वही विधि-आत्मक साधना कही जाती है। जैसे वैर के त्याग से निर्वैरता की उपलब्धि निषेधात्मक साधना है और मित्रता की अभिव्यक्ति विधि-आत्मक साधना है। जैसा कि 'आवश्यक सूत्र' में कहा है—"मित्ति मे सव्व भूएसु, वैरं मज्झं न केणइ।" अर्थात् मेरा सब प्राणियों के प्रति मैत्रीभाव है, किसी भी प्राणी के प्रति वैरभाव नहीं है। यहाँ वैरत्याग व मैत्रीभाव दोनों कहा है। इसी प्रकार हिंसा के त्याग से हिंसा-रहित होना निषेधात्मक साधना है और दया, दान, करुणा, वात्सल्य आदि सद्‌गुणों की अभिव्यक्ति विधि-आत्मक साधना है। मान के त्याग से निरभिमानता की उपलब्धि निषेधात्मक साधना है और विनम्रता का व्यवहार विधि-आत्मक साधना है। लोभ के त्याग से निर्लोभता की उपलब्धि निषेधात्मक साधना है और उदारता की अभिव्यक्ति विधि-आत्मक साधना है इत्यादि।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

साधना का महत्त्व :

यह नियम है कि निषेधात्मक साधना के परिपक्व होते ही विधि-आत्मक साधना स्वतः होने लगती है। यदि साधक के जीवन में विधि-आत्मक साधना की अभिव्यक्ति नहीं होती है तो समझना चाहिये कि निषेधात्मक साधना परिपक्व नहीं हुई है। यही नहीं, विधि-आत्मक साधना के बिना निषेधात्मक साधना निष्प्राण है। ऐसी निष्प्राण निषेधात्मक साधना अकर्मण्य व कर्तव्यहीन बनाती है जो फिर अकर्तव्य के रूप में प्रकट होती है। साधक के जीवन में साधना के निषेधात्मक एवं विधि-आत्मक इन दोनों अंगों में से किसी भी अंग की कमी है तो यह निश्चित है कि दूसरे अंग में भी कमी है। अथवा यह कहा जा सकता है कि निषेधात्मक साधना के बिना विधि-आत्मक साधना अधूरी है और विधि-आत्मक साधना के बिना निषेधात्मक साधना अधूरी है। अधूरी साधना सिद्धिदायक नहीं होती है। अतः साधक के जीवन में साधना के दोनों ही अंगों की परिपक्वता-परिपूर्णता आवश्यक है। वही सिद्धिदायक होती है।

इसी तथ्य को अध्यात्मज्ञान और मनोविज्ञान इन दोनों को मिलाकर कहे तो यों कहा जा सकता है कि इन्द्रिय-असंयम, कषाय आदि दोषों (पापों) के त्याग रूप निषेधात्मक साधना से आत्म-शुद्धि होती है और उस आत्म-शुद्धि की अभिव्यक्ति जीवन में सत्मन, सत्य वचन, सत्कार्य रूप सद्प्रवृत्तियों-सद्गुणों में होती है, यही विधि-आत्मक साधना है। इसी विधि-आत्मक साधना को जैन-दर्शन में शुभ योग कहा गया है और शुभ योग को संवर कहा है। अतः शुभ योग आत्म-शुद्धि का ही द्योतक है। कारण कि अध्यात्म एवं कर्म-सिद्धान्त का यह नियम है कि जितना-जितना यह कषाय घटता जाता है उतनी-उतनी आत्म-शुद्धि होती जाती है—आत्मा की पवित्रता बढ़ती जाती है। जितनी-जितनी आत्म-शुद्धि बढ़ती जाती है, उतना-उतना योगों में—मन-वचन-काया की प्रवृत्तियों में शुभत्व बढ़ता जाता है। प्रवृत्तियों का यह 'शुभत्व' शुद्धत्व (शुद्धभाव) का ही अभिव्यक्त रूप है। शुद्धत्व भाव है और शुभत्व उस शुद्धभाव की अभिव्यक्ति है। इस शुभत्व एवं शुद्धत्व की परिपूर्णता में ही सिद्धि की उपलब्धि है।

आचार्य श्री की साधना व प्रेरणा :

आचार्य श्री हस्तीमलजी म. सा. के जीवन में साधना के दोनों अंग—अर्थात् निषेधात्मक साधना एवं विधि-आत्मक साधना—परिपुष्ट परिलक्षित होते हैं। उनके साधनामय जीवन में दिन के समय विधि-आत्मक साधना की और रात्रि के समय निषेध-आत्मक साधना की प्रधानता रहती थी। दिन में सूर्योदय होते ही आचार्य प्रवर स्वाध्याय, लेखन, पठन-पाठन, उद्बोधन आदि किसी न किसी सद्प्रवृत्ति में लग जाते थे और यह क्रम सूर्यास्त तक चलता रहता था।

Jain Educationa International   For Personal and Private Use Only   www.jainelibrary.org

'खण निकमो रहणो नहिं, करणो आतम काज' अर्थात् 'साधना में क्षण मात्र का भी प्रमाद न करना' यह सूत्र आचार्य श्री की साधना का मूलमंत्र था। स्वर्गवास के कुछ मास पूर्व तक स्वस्थ अवस्था में आचार्य श्री ने दिन में निद्रा कभी नहीं ली। वे स्वयं तो किसी न किसी सद्प्रवृत्ति में लगे ही रहते थे साथ ही अपने पास बैठे दर्शनार्थियों को भी स्वाध्याय, जप, लेखन आदि किसी न किसी सद्प्रवृत्ति में लगा देते थे। किसी का समय विकथा व सावद्य (दूषित) प्रवृत्ति में न जाने पावे, इसके प्रति वे सदा सजग रहते थे। आगन्तुक दर्शनार्थी को आते ही उसकी साधना कैसी चल रही है तथा उसके ग्राम में धर्म-ध्यान कितना हो रहा है, यह पूछते थे। फिर उसे उसकी पात्रता के अनुसार आगे के लिए साधना करने की प्रेरणा देते थे। कौनसा व्यक्ति किस प्रकार की साधना का पात्र है, इसके आचार्य श्री विलक्षण परखैया थे। जो जैसा पात्र होता उसे वैसी ही साधना की ओर आगे बढ़ाते थे। धनवानों व उद्योगपतियों को परिग्रह-परिमाण करने एवं उदारतापूर्वक दान देने की प्रेरणा देते थे। उनके बच्चों को दुर्व्यसनों का त्याग कराते एवं सामायिक-स्वाध्याय करने का व्रत दिलाते। विद्वानों को लेखन-चिंतन की व अनुसंधान-अन्वेषण की प्रेरणा देते थे। श्राविकाओं को गृहस्थ के कार्य में हिंसा, अपव्यय, अखाद्य से कैसे बचें, बच्चों को सुसंस्कारित कैसे बनायें, मार्ग-दर्शन करते थे। सामान्य जनों एवं सभी को स्वाध्याय व सामायिक की प्रेरणा देते नहीं थकते थे। साधक साधना पथ पर आगे बढ़े एतदर्थ ध्यान-मौन, व्रत-प्रत्याख्यान, त्याग-तप की प्रेरणा बराबर देते रहते। आपकी प्रेरणा के फलस्वरूप सैंकड़ों स्वाध्यायी, बीसों लेखक, अनेक साधक व कार्यकर्ता तैयार हुए, बीसों संस्थाएँ खुलीं। इस लेख के लेखक का लेखन व सेवा के क्षेत्र में आना आचार्य श्री की कृपा का ही फल है।

आचार्य श्री का विधि-आत्मक साधना के बीच में समय-समय पर ध्यान, मौन, एकान्त आदि निषेधात्मक साधना का क्रम भी चलता रहता था यथा—आचार्य श्री के हर गुरुवार, हर मास की बदि दशमी, हर पक्ष की तेरस, प्रतिदिन मध्याह्न में १२ बजे से २ बजे तक तथा प्रातःकाल लगभग एक प्रहर तक मौन रहती थी। मध्याह्न में १२ बजे से लगभग एक मुहूर्त्त का ध्यान नियमित करते रहे। आचार्य श्री की यह मौन-ध्यान आदि की विशेष साधना चिंतन, मनन, लेखन आदि विधि-आत्मक साधना के लिए शक्ति देने वाली व पुष्ट करने वाली होती थी। आचार्य श्री रात्रि में प्रतिक्रमण व दिन में आहार-विहार के शुद्धिकरण के पश्चात् 'नंदीसूत्र' आदि किसी आगम का स्वाध्याय, जिज्ञासुओं की शंकाओं का समाधान, कल्याण मन्दिर आदि स्तोत्र से भगवद्भक्ति आदि धर्म-साधना नियमित करते थे। रात्रि को अत्यल्प निद्रा लेते थे। रात्रि में अधिकांश समय ध्यान-साधना में ही रत रहते थे। आशय यह है कि आचार्य श्री सारे समय किसी न किसी प्रकार की साधना में निरंतर निरत रहते थे।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

आचार्य श्री की जप, स्वाध्याय, लेखन, पठन-पाठन, प्रवचन, चिंतन, मनन आदि विधि-आत्मक साधना का लक्ष्य भी राग-द्वेष, बिषय-कषाय पर विजय पाना था और निषेधात्मक साधना का लक्ष्य भी यही था। आपकी विधि-आत्मक साधना निषेधात्मक साधना को पुष्ट करने वाली थी और निषेधात्मक साधना से मिली शक्ति व स्फूर्ति विधि-आत्मक साधना को पुष्ट करने वाली थी। इस प्रकार विधि-आत्मक एवं निषेधात्मक ये दोनों साधनाएँ परस्पर पूरक, पोषक व वीतरागता की ओर आगे बढ़ाने में सहायक थीं। आचार्य श्री की साधना उनके जीवन की अभिन्न अंग थी। जीवन ही साधना था, साधना ही जीवन था। आचार्य श्री ने साधना कर अपने जीवन को सफल बनाया। इसी मार्ग पर चलने, अनुकरण व अनुसरण करने में ही हमारे जीवन की सार्थकता व सफलता है।

—अधिष्ठाता, श्री जैन सिद्धान्त शिक्षण संस्थान
ए-६, महावीर उद्यान पथ, बजाज नगर, जयपुर–३०२ ०१७

अमृत-कण

• सामायिक अर्थात् समभाव उसी को रह सकता है, जो स्वयं को प्रत्येक भय से मुक्त रखता है। —**सूत्रकृतांग**

• जिस प्रकार पुष्पों की राशि में से बहुत सी मालाएँ बनाई जा सकती हैं, उसी प्रकार संसार में जन्म लेने के बाद मनुष्य को चाहिए कि वह शुभ कार्यों की माला गूंथे। —**धम्मपद**

• जिसका वृत्तान्त सुनकर, जिसको देखकर, जिसका स्मरण करके समस्त प्राणियों को आनन्द होता है, उसी का जीवन शोभा देता है—अर्थात् सफल होता है। —**योगवशिष्ठ**

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org